'नारद' के व्यक्तित्व के बारे में जैन ग्रन्थों मे प्रदर्शित संभ्रमावस्था

(वैदिक तथा वेदोत्तरकालीन परम्परा के सन्दर्भ में)

ले. शोधछात्रा : डो. कौमुदी बलदोटा

प्रस्तावना :

प्राकृत भाषाभ्यासी होने के नाते 'इसिभासियाइं' नाम के अर्धमागधी प्रकीर्णक ग्रन्थ की ओर मेरा ध्यान विशेष आकृष्ट हुआ । समझ में आया कि अपना अनेकान्तवादी उदारमतवादी स्वरूप बरकरार रखते हुए, इस ग्रन्थ में जैन विचारवंतों के साथ साथ ब्राह्मण तथा बौद्ध परम्परा के विचारवन्तों का भी आदरपूर्वक जिक्र किया है । 'ऋषिभाषित' में कुल ४५ ऋषियों के विचार शब्दाङ्कित किये हैं । इस ग्रन्थ की अर्धमागधी भाषा का स्तर आचाराङ्ग जैसे प्राचीनतम ग्रन्थ की भाषा से मिलताजुलता है । प्राकृतविद्या के क्षेत्र में यह तथ्य अब स्वीकृत हो चुका है ।

ऋषिभाषित में 'ऋषि' नारद :

ऋषिभाषित का पहला अध्ययन नारदविषयक है । नारद के लिए उपयुक्त 'ऋषि' शब्द ब्राह्मण परम्परा का द्योतक मान सकते हैं । नारद का गौरव 'अर्हत्, देव, सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, विरत' इन विशेषणों से किया है ।[१] इस अध्ययन में 'सोयव्व' याने 'श्रोतव्य' क्या है, इससे सम्बन्धित नारद के विचार अंकित किये हैं । प्राणातिपातविरमण आदि चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन नारद के मुख से किया है । चातुर्याम धर्म की परम्परा पार्श्वनाथ के इतिहास में पायी जाती है । इससे यह तथ्य उजागर होता है कि महावीर के पहले भी नारद के गौरवान्वित स्थान की परम्परा जैन विचारधारा में दृढमूल है । नारद का यह सम्मानित स्थान हमारे शोधनिबन्ध का प्रारम्भबिन्दु बन गया ।

यद्यपि 'श्रोतव्य' का अर्थ 'श्रवणीय' है और जैन परम्परा ने नारदद्वारा प्रतिपादित चातुर्याम धर्म को श्रवणीयता का दर्जा दिया है, तथापि श्रवणीयता का

नेशनल संस्कृत कॉन्फरन्स, नागपुर, १,२,३ मार्च २००९ में पठित शोधप्रबन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्बन्ध प्रमुखता से नामसंकीर्तन तथा गायन से है। ऋग्वेद के आठवें मण्डल में नारद काण्व ऋषि कहता है, 'हे इन्द्र, तुम्हारा रथ और अश्व वीर्यशाली हैं। हे अपार कर्तृत्व के धनी, तुम खुद वीर्यशाली हो तथा तुम्हारा नामसंकीर्तन भी वीर्यशाली है।'[२] रामायण के बालकाण्ड में नारद द्वारा सनत्कुमार को रामायण नामक महाकाव्य का 'गान' सुनाने का उल्लेख है।[३] पुराणकाल में प्रचलित नवविधा भक्ति का पहला प्रकार भी 'श्रवण' ही है। नारद से जुडे हुए नामसंकीर्तन अथवा श्रवण अर्थात् भक्तिसम्प्रदाय से निगडित सन्दर्भ हमें ऋग्वेद से ही आंशिक रूप से प्राप्त होते हैं। सैद्धान्तिक दृष्टि से जैन परम्परा में 'नामसंकीर्तन' तथा 'श्रवण' का स्थान प्राथमिक स्तर पर अधोरेखित नहीं किया गया है। इसी कारण से 'श्रोतव्य' का अर्थ श्रवणीय महाव्रतों के रूप में प्रस्तुत किया है।

ऋषिभाषित की अन्तिम गाथा में नारद ने सत्य, दत्त (भिक्षाचर्या) और ब्रह्मचर्य को उपधान याने 'आश्रयणीय तप' कहा है। यही सूत्र पकडकर आवश्यनिर्युक्ति आदि ग्रन्थों में 'सोय' शब्द का अर्थ 'शौच' और 'शौच' शब्द का अर्थ 'सत्य' बताया है।[४] कोई भी साधु दूसरे को उपदेशश्रवण कराये बिना भिक्षा का स्वीकार नहीं करता, इस तथ्य का सूचन भी इसीसे होता है। जैन परम्परा ने नारद के ब्रह्मचारी होने की मान्यता आखिरतक कायम रखी है। हिन्दु पुराणों की तरह उसे विवाहित और पुत्रपौत्रसहित नहीं माना है।

सर्वदा, सर्वत्र और सर्वकाल विचरण करनेवाला होकर भी निर्ममत्व अर्थात् अनासक्ति के कारण सदैव उपलिप्तता से रहित होने का जो जिक्र ऋषिभाषित में किया है इससे भी नारद के सर्वसंचारित्व तथा अनासक्ति का द्योतन होता है। इसी सूत्र को आगे जाकर दोनों परम्परा ने बरकरार रखा है।

ऋषिभाषित में नारद का जो गौरवान्वित स्थान अंकित किया है और उनके मुख से जिन-जिन शब्दों का प्रयोग करवाया है, इससे यह प्रतीत होता है कि यद्यपि हिन्दु पुराणों के परिवर्तनों के साथ साथ नारद के व्यक्तिमत्व में अनेक प्रकार के परिवर्तन आये तथापि आचाराङ्ग के समकालीन ग्रन्थ में अंकित उनके आदरणीय स्थान की छाया जैन ग्रन्थकारों में मन पर तथा साहित्य पर सर्वदा छायी रही। अनेक परस्परविरोधी मतों का तथा विशेषणों का मिलन करते हुए उन्हें जो कठिनाई महसूस हुई इसीके कारण जैन आचार्यों की संभ्रमावस्था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिखाई देती है ।

यद्यपि ऋषिभाषित भाषिक दृष्टि से आचाराङ्ग से निकटता रखता है तथापि अर्धमागधी आगमग्रन्थों के विभाजन में ऋषिभाषित का स्थान अङ्ग, उपाङ्ग आदि ग्रन्थों के बाद प्रकीर्णकों में निश्चित किया है । इस शोधलेख में आधुनिक मान्यताप्राप्त क्रम स्वीकार करके स्थानाङ्ग आदि क्रम से विवेचन किया है ।

स्थानाङ्ग में 'देव' नारद :

ऋषिभाषित में जिस नारद को सिद्ध-बुद्ध-मुक्त बताया है, उसे स्थानाङ्ग ने देवलोक में स्थान दिया है । क्योंकि ऋषिभाषित में ही 'देवनारदेण अरहता इसिणा बुइयं' ऐसा उल्लेख पाया जाता है ।[५] नारद का देवत्व स्थानाङ्ग में निश्चित ही गौणत्वसूचक है । नारद का त्रैलोक्यसंचारित्व ध्यान में रखकर उन्हें 'व्यन्तरदेव' कहा है । गायनप्रवीणतानुसार उन्हें व्यन्तरदेवों के चौथे 'गान्धर्व' उपविभाग में स्थान दिया है ।[६] इसके समर्थन में स्थानाङ्ग में कहा है कि गान्धार स्वरवाले व्यक्ति गाने में कुशल, श्रेष्ठ जीविकावाले, कला में कुशल, कवि, प्राज्ञ और विभिन्न शास्त्रों के पारगामी होते हैं ।[७]

ऋषिभाषित के 'श्रोतव्य' का अन्वयार्थ 'श्रवणीय गान' इस प्रकार यहाँ किया गया होगा । भागवतपुराण के अनुसार नारद ने कृष्ण, जाम्बवती, सत्यभामा, रुक्मिणी से गानविद्या सीखी थी ।[८] भागवतपुराण में उनके वीणावादन के भी उल्लेख पाये जाते हैं ।[९] नारद के देवत्व की यही सूचना तत्त्वार्थसूत्र ने आगे बढायी है ।

समवायाङ्ग में 'भावी तीर्थंकर' नारद :

समवायाङ्ग के अनुसार जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी में नारद 'इक्कीसवें तीर्थंकर' होनेवाले हैं ।[१०] समवायाङ्ग के इस उल्लेख से सूचित होता है कि उन्हें भावी तीर्थंकर बताकर उनके प्रति आदरणीयता तो सूचित की है लेकिन ऋषिभाषित में जिस प्रकार उन्हें उसी जन्म में सिद्ध-बुद्ध-मुक्त कहा है उस प्रकार का सम्मानित स्थान समवायाङ्ग में नहीं है । इसका कारण यह हो सकता है कि वासुदेव कृष्ण भावी तीर्थंकर होनेवाले हैं । नारद और कृष्ण का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकदूसरे के सम्पर्क में रहना, दोनों परम्पराओं ने समान रूप से चित्रित किया है। वासुदेव कृष्ण का प्रथमतः नरकगामी होना और नारद का न होना एक अजीब सी बात है। इसका कारण यह होगा कि जैन परम्परा के अनुसार भी नारद ऋषि है, परिव्राजक है, अनगार है तथा यज्ञीय पशुहिंसा के विरोधक भी है।

भागवतपुराण के अनुसार विष्णु का तीसरा अवतार नारद है।[११] हालाँकि परवर्ती दस अवतारों में इनकी गिनती नहीं की है।

नारद के भावी तीर्थंकरत्व के उल्लेख उत्तरपुराण[१२] तथा प्रवचनसारोद्धार[१३] में भी पाये जाते हैं। लेकिन नारद के पूर्वजन्म या भावी जन्म की कथाएँ यहाँ अंकित नहीं की गयी है।

भगवतीसूत्र में 'नारदपुत्त अनगार' :

भगवतीसूत्र का नारदपुत्त औपपातिकसूत्र में प्रतिपादित नारदीय परिव्राजकों की परम्परा का मालूम पडता है। वहाँ उसको साक्षात् नारद न कहके 'नारदपुत्त' शब्द से अंकित किया है। जैन परम्परा में देवर्षि नारद को कृष्ण और अरिष्टनेमि के समकालीन माना है। इसलिए उसी नारद का महावीर के साथ बातचीत करना, उन्हें कालविपर्यासात्मक लगा होगा।

भगवतीसूत्र में परमाणुपुद्गलविषयक चर्चा नारदपुत्त अनगार और निर्ग्रन्थीपुत्र अनगार दोनों में चल रही है। निर्ग्रन्थीपुत्र परमाणुपुद्गल के सप्रदेशत्व-अप्रदेशत्व तथा परमाणुओं के स्कन्धों के बारे में नारदपुत्त को प्रश्न पूछता है। नारदपुत्त के एकान्तवादी मत पर निर्ग्रन्थीपुत्र द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की अपेक्षा से मत प्रदर्शित करता है।[१४] चतुर्विध निक्षेप अथवा न्यासों पर आधारित खास जैन दृष्टिकोण, परिव्राजक नारदपुत्त को समझाने की यह कोशिश, दोनों परम्पराओं के आदानप्रदान प्रक्रिया की प्रतिनिधिस्वरूप मानी जा सकती है।

वेदोत्तरकालीन तथा पौराणिक परम्परा में नारद की जिज्ञासा तथा ज्ञानलालसा बारबार दृग्गोचर होती है। जैसे कि छान्दोग्य-उपनिषद् में नारद-सनत्कुमार संवाद प्रस्तुत किया है। सर्व विद्याओं का ज्ञाता होकर भी नारद आत्मविद्याविषयक तथ्य सनत्कुमार से जानना चाहता है।[१५] महाभारत के शान्तिपर्व के अन्तर्गत नारायणीय उपाख्यान में प्रकृति का विशेष स्वरूप जानने के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारद के श्वेतद्वीपगमन का उल्लेख है ।[१६] भागवतपुराण में नारद ब्रह्मदेव को सृष्ट्युत्पत्तिसम्बन्धी प्रश्न पूछता है और ब्रह्मदेव विस्तार से उसकी जिज्ञासापूर्ति करता है ।[१७]

इससे यह स्पष्ट होता है कि नारद, चेतनतत्त्व के बारे में जानने के लिए जितना उत्सुक है इतना ही वह जड प्रकृति का स्वरूप जानने के लिए भी तत्पर है । जिज्ञासा, ज्ञानलालसा, प्रश्नोत्तररूप संवाद आदि के जो अंश नारद के स्वभाव में हिन्दु परम्परा में प्राप्त है, वही अंश हमें भगवतीसूत्र में भी मिलते हैं । नारद का श्रमण परम्परा के साथ वैचारिक आदानप्रदान होते रहने का यह तथ्य अन्य जैन साहित्य से भी उजागर होता है ।

दोनों परम्पराओं ने नारद के 'सर्वसंचारित्त्व' का उपयोग ज्ञानलालसा की पूर्ति के लिए अच्छी तरह से करवाया है ।

तत्त्वार्थसूत्र के 'दैवतशास्त्र' में नारद :

चौथी शताब्दी के संस्कृत सूत्रबद्ध तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में शब्दबद्ध दैवतविषयक विवेचन में नारद का स्थान विशेष ही दृढमूल हुआ । देवों के चार निकायों में दूसरे क्रमांक पर व्यन्तरदेव हैं । व्यन्तरदेव तीनों लोकों में भवनों तथा आवासों में बसते हैं । वे स्वेच्छा से या दूसरों की प्रेरणा से भिन्न भिन्न स्थानों पर जाते रहते हैं । उनमें से कुछ मनुष्यों के सम्पर्क में भी रहते हैं । व्यन्तरों के आठ प्रकार है । उसमें चौथे स्थान पर 'गान्धर्व' है । गान्धर्वों के बारह प्रकारों में तुम्बुरव और नारद की गणना की है ।[१८] इसका मूलाधार हमें 'पन्नवणा' नाम के अर्धमागधी उपाङ्ग से भी प्राप्त होते हैं ।[१९] व्यन्तरदेवों के अवधिज्ञान होने का जिक्र भी तत्त्वार्थसूत्र ने किया है ।[२०]

रामायण, भागवतपुराण तथा अन्य ग्रन्थों में भी नारद का त्रैलोक्यज्ञातृत्व स्पष्ट किया है । रामायण के बालकाण्ड में उल्लेख है कि नारद ब्रह्मदेव की सभा देखने मेरुपर्वत के शिखरपर गये थे ।[२१] भागवतपुराण के प्रथम स्कन्ध में नारद कहते हैं, 'मैं भगवान् की कृपा से वैकुण्ठ तथा तीनों लोकों में बाहर और भीतर बिना रोकटोक विचरण किया करता हूँ ।'[२२]

तत्त्वार्थसूत्र के चौथे अध्याय में लोकान्तिक देवों को 'देवर्षि' कहा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देवर्षि 'नौ' हैं । यद्यपि इनमें 'देवर्षि नारद' स्पष्टत: से नहीं कहा है तथापि देवर्षियों के गुणविशेष देखकर यह मालूम होता है कि यह देवर्षि नारद के व्यक्तित्व से बहुत ही निकटता दिखायी देती है । उनका परित्तसंसारी होना, विषयरति से परे होना, देवों द्वारा पूजित होना तथा चौदह पूर्वों के ज्ञाता और तीर्थंकर होना ये सब विशेष देवर्षि नारद के व्यक्तित्व से मेल खाते हैं । लोकान्तिक देवों का निवासस्थान 'ब्रह्मलोक' नामक पाँचवा स्वर्ग है । उनके इन्द्र को 'ब्रह्मा' कहते हैं ।[२३]

वैदिक मान्यता के अनुसार भी देवलोक में अर्थात् स्वर्गलोक में वास्तव्य करनेवाले ऋषियों को 'देवर्षि' कहते हैं । देवर्षि 'दस' हैं । और उनमें से पहली गिनती नारद की है ।[२४] रामायण, भगवद्गीता और भागवतपुराण में नारद को 'देवर्षि' कहा है । इस परम्परा के अनुसार वे देव द्वारा पूजित है तथा त्रैलोक्यज्ञाता तथा विषयरति से परे हैं । भागवतपुराण में नारद को ब्रह्मा का मानसपुत्र कहा है[२५], यह बात भी विशेष लक्षणीय है ।

तत्त्वार्थसूत्र में लोकान्तिक देवों की गिनती करते समय 'नारद' नामक व्यक्तिगत उल्लेख नहीं किया है । तथापि 'देवर्षि' नामक उपर्युक्त विशेषताओं से सम्पन्न 'पद' की निर्मिती करके उसे 'देवर्षि' नामाभिधान दिया होगा । देवर्षि नाम का उपयोग करते हुए उनके मन में कहींना कहीं नारद के व्यक्तिमत्व की छाया जरूर छायी होगी ।

तत्त्वार्थसूत्र के दैवतशास्त्र में दो बार देवर्षि नारद का जिक्र क्यों किया ? इस प्रश्न का समाधान हम ढूँढ सकते हैं । औपपातिक उपाङ्गसूत्र में नारदीय परिव्राजकों को व्यन्तरगति प्राप्त होने का उल्लेख है ।[२६] इसी वजह से तत्त्वार्थ में व्यन्तरदेवों में उनकी गणना की होगी । तथापि 'देवनारदेण अरहता इसिणा बुइयं' इस ऋषिभाषितगत वाक्य से सूचित उसका देवर्षिरूप आदरणीय स्थान उन्होंने लोकान्तिक देवों के 'देवर्षि' नाम से सूचित किया है । साक्षात् 'नारद' नाम का उल्लेख नहीं है ।

तत्त्वार्थसूत्रकार के सामने हिन्दु और जैन परम्परा के जितने भी नारदविषयक सन्दर्भ थे, उनपर सोचविचारकर उन्होंने आदरणीय व्यक्तित्व के रूप में 'देवर्षि' नामक लोकान्तिक देवों को स्थान दिया होगा । तथा विचरणशील

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नारद को व्यन्तरदेवों में रखा होगा। नारद के प्रति संभ्रमावस्था का हल तत्त्वार्थने इस प्रकार निकाला।

ज्ञाताधर्मकथा में 'कच्छुल्लनारद' :

अर्धमागधी का छठा अङ्गग्रन्थ ज्ञाताधर्मकथा का काल प्रायः इसवी की पाँचवी शताब्दी का मान्य हो चुका है। इसके सोलहवें द्रौपदी–अध्ययन में नारद का विस्तृत चित्रण पाया जाता है। इसमें नारद का चित्रण बिलकुल अलग तरह से किया है। पूरे अध्ययन में इसे 'कच्छुल्लनारद' संज्ञा से ही निर्देशित किया है।[२७] उसे 'ऋषि', 'देवर्षि', 'अनगार', 'परिव्राजक' आदि विशेषणों से सम्बोधित नहीं किया है।

जैन परम्परा में अन्यत्र इतनी बडी मात्रा में नारद का व्यक्तिगत शारीरिक वर्णन नहीं पाया जाता जितना कि ज्ञाताधर्मकथा में शब्दाङ्कित है। ये 'कच्छुल्लनारद' याने कलहप्रिय अथवा अकच्छपरिधानवाले नारद, दर्शन में अतिभद्र, बाहर से विनम्र अन्तरङ्ग में कलुषित, मध्यस्थ, सौम्य, प्रियदर्शन, सुरूप, निर्मल वस्त्र परिधान करनेवाले, मृगचर्म का उत्तरीय पहननेवाले, दण्ड–कमण्डलुसहित, जटारूपी मुगुट पहननेवाले, यज्ञोपवीत तथा रुद्राक्षमाला धारण करनेवाले, मुंज की मेखला धारण करनेवाले, गीतप्रिय, आकाशगमन करनेवाले तथा पृथ्वीपर भी उतरनेवाले, संक्रामणिस्तम्भिनी आदि विद्याधरों की विद्याओं से सम्पन्न, बलराम–कृष्णसहित सभी यादवों के वल्लभ, वाग्युद्ध में पटु, कलह के अभिलाषी इस प्रकार के थे।[२८]

उक्त विशेषोंसहित नारद पण्डुराजा के भवन में पधारते हैं। एक द्रौपदी छोडकर सभी नारद का आदर–वन्दन आदि करते हैं। द्रौपदी उन्हें 'असंयत' मानकर सम्मान नहीं देती। नारद मन ही मन द्रौपदी के पाँच पति होने का गर्व हरण करने की बात सोचते हैं। धातकीखण्ड में स्थित अवरकंका नगरी के पद्मनाभ राजा को द्रौपदी का सौन्दर्यवर्णन करके उकसाते हैं। परिणामवश पद्मनाभ राजा देवताद्वारा द्रौपदी का अपहरण करता है। बाद में कृष्ण वासुदेव को इसकी खबर भी देता है। कथा में अकस्मात् अवतीर्ण होकर नारद, उसी तरह से कथानक से निवृत्त होते हैं।

- नारद के प्रति 'कच्छुल्ल' शब्द का उपयोग भी सिर्फ ज्ञाता में ही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पाया जाता है ।

- ज्ञाताधर्मकथा में 'कच्छुल्लनारद' शब्द का प्रयोग करके कथाकार ने उसके कलहशील तथा अनादरणीय अंशों का पकडकर प्रश्तुत करना तय किया है । उपर्युक्त अन्य विशेषणों में भी उनके प्रति अनादरणीयता ही ज्यादा झलकती हैं ।
- ज्ञाताकार की दृष्टि से नारद 'कृष्णचरित्र' से जुड़े हुए हैं ।
- 'द्रौपदी अपहरण की घटना तथा नारद से इसका सम्बन्ध' यह बात ज्ञाताकार की अपनी खुद की प्रतिभानिर्मिती है । ज्ञाता के पूर्व के दोनों परम्पराओं के किसी भी ग्रन्थ से द्रौपदी-अपहरण का उल्लेख नहीं पाया जाता ।
- द्रौपदी द्वारा अनादर तथा अन्यद्वारा आदरभाव दिखाने में ज्ञाताकार की संभ्रमित अवस्था दिखाई देती है ।
- नारद के व्यक्तित्व के ब्राह्मणत्वसूचक विशेषण खास तरीके से पल्लवित करना तथा द्रौपदी से उसे 'असंयत' कहलवाना आदि बातों से सूचित होता है कि जैन परम्परा में अब साम्प्रदायिक अभिनिवेश ने प्रवेश किया है ।
- यह कथा आगमप्रविष्ट होने के कारण, बाद के अनेक ग्रन्थकारों ने स्त्रियों द्वारा अनादर, द्रौपदी का अपहरण आदि विविध घटनाओं से नारद को 'मिथक' के स्वरूप में स्वीकारकर विविध प्रकार से कथाएँ प्रस्तुत की । क्योंकि यही कथा अल्पस्वल्प परिवर्तनों के साथ हमें दशवैकालिकटीका[२९], कल्पसूत्रटीका[३०], आख्यानकमणिकोश[३१], प्रवचनसारोद्धार[३२], शीलोपदेशमाला-बालावबोध[३३], उपदेशपदटीका[३४] आदि ग्रन्थों में मिलती है । मतलब जैन माहौल में नारद के इस प्रकार के चित्रण की परम्परा नायाधम्मकहा से शुरू हुई ।

नारद के व्यक्तित्व के कलहप्रियता का यह अंश हम ब्राह्मण परम्परा से भी ढूंढ सकते हैं लेकिन इस अंश का इतनी तीव्रता से तथा स्पष्टता से चित्रण ब्राह्मण परम्परा में नहीं पाया जाता । ब्राह्मण परम्परा में यह भी दिखाया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गया है कि नारदद्वारा उपस्थित कलहों का परिणाम अन्तिमतः अच्छा और कल्याणकर होता है ।

हरिश्चन्द्र से वरुणदेवता के प्रीत्यर्थ यज्ञ करने की सलाह देकर पुत्रप्राप्ति करवाना तथा बाद में इन्द्र और वरुण के आपसी कलह का फायदा उठवाकर 'नरमेध' टालकर उस पुत्र को इन्द्र के द्वारा बचाना यह सब कार्य 'नारद' बहुत ही कुशलता से करते हैं । यह सब वृत्तान्त ऐतरेय ब्राह्मण से प्राप्त होता है ।[३५] यद्यपि ऐतरेय ब्राह्मणने नारद की कलहप्रियता सूचित की है तथापि उसके परिणाम अन्तिमतः भले ही होते हैं । इस कथा में ऐतरेय ब्राह्मण ने नारद की नरमेधविरोधिता तथा उनकी राजनीतिपटुता पर प्रकाश डाला है । ऋग्वेद में चित्रित काण्व नारद की व्यक्तिरेखा से ये दो अंश अच्छी तरह मिलतेजुलते हैं ।

रामायण के उत्तरकाण्ड में रावण नारद से कहता है कि युद्ध के दृश्य देखना आपको बहुत ही प्रिय है ।[३६] रामायण के इस कथाभाग में यह सूचित नहीं किया है कि नारद युद्ध करवाते हैं लेकिन यही युद्धप्रियता का अंश ज्ञाताधर्मकथा ने उठाकर स्पष्ट शब्द में कहा है कि यह नारद 'कलहजुद्धकोलाहलप्पिय' तथा 'भंडणाभिलासी' है ।

स्वर्ग से पारिजातक का फूल लाकर नारद, सत्यभामा और रुक्मिणी में कलह करवाते हैं तथा सत्यभामा से कृष्ण का दान देकर उसे प्रतिबोधित करके कृष्ण को फिर वापस देते हैं ।[३७] विष्णुपुराण के इन कथाओं में नारद की कलहप्रियता दृग्गोचर होती है । कथा की रचना तथा शब्दयोजना इस कुशलता से ही है कि उससे नारद के मन की दूषितता नहीं दिखायी देती लेकिन उसका हँसीमजाकवाला स्वभाव प्रगट होता है ।

मार्कण्डेयपुराण के एक प्रसंग के अनुसार नारद, इन्द्रसभा में जाकर अप्सराओं का आपस में कलह करवाता है ।[३८] इस कलह के पीछे दुर्वासऋषि को अन्तर्मुख करवाने का उद्देश्य स्पष्टतः दिखायी देता है ।

भागवतपुराण, विष्णुपुराण, मार्कण्डेयपुराण में नारद के स्त्रियों के सम्पर्क में आने की तथा निरासक्त ब्रह्मचर्यपालन की जो बात उठायी है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसका मूल हमें महाभारत में मिलता है । महाभारत में कहा है कि विविध विषयों में सतत जिज्ञासा रखनेवाले नारद ने पंचचूडा से स्त्रीस्वभाव समझ लिया था ।[३९] सामान्यत: स्त्रियों में उपस्थित मत्सर और कलहप्रियता के अंश नारद ने उनके सम्पर्क में आकर अधिक परिष्कृत किये हुए दिखायी देते हैं ।

भागवतपुराण, विष्णुपुराण तथा मार्कण्डेयपुराण आदि पुराणों से नारद की कलहप्रियता तथा स्त्रीसम्पर्क ये दोनों मुद्दे उठाकर जैन ग्रन्थकारों ने विविध ग्रन्थों में प्रस्तुत किये हुए दिखायी देते हैं । पुराणों की तुलना में जैन ग्रन्थों में आदरणीयता तो कम दिखायी देती है ।

उपरिलिखित सब चर्चा का फलित यह है कि यद्यपि ज्ञाताकार ने 'कच्छुल्लनारद' कहकर नारद के प्रति अनादरणीयता प्रगट की है तथापि ऋषिभाषित में अंकित नारद के प्रति आदरणीयता का भाव उसके मन से पूरी तरह ओझल नहीं हुआ है । इसी वजह से उसने पण्डु, कृष्ण, कुन्ती आदिद्वारा नारद का सम्मानित भाव भी दिखाया है और उसके नीच गतिगामी होने का कोई संकेत नहीं दिया है ।

औपपातिक में 'नारदीय-परिव्राजक' :

औपपातिकसूत्र में विविध प्रकार के समकालीन तापसों के आचार का संक्षिप्त विवेचन किया है । उसमें आठ ब्राह्मण जाति के परिव्राजकों में नारद की गणना की है ।[४०] आश्चर्य की बात यह है कि नारद को एक व्यक्ति मानकर उसके विशेषण, उसकी कथाएँ यहाँ बिलकुल नहीं दी है । औपपातिक में ही आगे जाकर नारदीय परिव्राजकों के आचार का वर्णन टीकाकार ने दिया है । कहा है कि, "ये नारदीय परिव्राजक दानधर्म की, शौचधर्म की, तीर्थाभिषेक आदि की सब बातें जनता को अच्छी तरह समझाते हुए जनता में विचरते रहते हैं ।"[४१]

औपपातिक के टीकाकार के काल तक (बारहवी शताब्दी) देवर्षि नारद से शुरू हुई परम्परा का एक संकीर्तनात्मक भक्तिसम्प्रदाय जरूर बना होगा । क्योंकि टीकाकार कहते हैं कि, 'ये सब कृष्ण की भक्ति करनेवाले हैं ।' लगता है कि उपदेश और गुणसंकीर्तन उनकी विशेषताएँ होंगी ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

औपपातिक में उनके आगामी गति का वर्णन है । कहा है कि, ''ये नारदीय परिव्राजक व्यन्तरदेव होंगे अथवा ज्यादा से ज्यादा ब्रह्मलोक नामक पाँचवें स्वर्ग में जायेंगे ।''

वेदोत्तरकालीन पौराणिक परम्परा में ग्यारहवी-बारहवी शताब्दी से विविध भक्तिसम्प्रदायों का जो उद्‌गम माना जाता है, उसके सूचक सन्दर्भ हमें औपपातिक (पाँचवी-छठ्ठी शती) तथा औपपातिक टीका से प्राप्त होते हैं ।

आवश्यकनिर्युक्ति तथा आवश्यकटीका में 'नारदोत्पत्ति' :

नारद के मातापिता तथा अध्ययन आदि का वर्णन जैन परम्परा में प्रथमतः आवश्यकनिर्युक्ति[४२] तथा आवश्यकटीका[४३] में दिखाई देता है । नारद के मातापिता तथा दादादादी के 'यज्ञयश' आदि नाम ब्राह्मण परम्परा के सूचक हैं । उनके तापस होने का भी कथन है । जिस उञ्छवृत्ति का यहाँ निर्देश है, उसका विशेष वर्णन हमें महाभारत[४४] में मिलता है । बालक नारद के ऊपर जृम्भक देवों ने कृपा करना तथा प्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थों का पठन करवाना ये घटनाएँ उनके श्रमण परम्परा के नजदीक होने की सूचना देती हैं । मणिपादुका तथा कांचनकुण्डिका के उल्लेख पुनः उनके ब्राह्मणत्व के ही द्योतक हैं ।

आवश्यकटीकान्तर्गत कथा का उत्तरार्ध ऋषिभाषित के प्रथम अध्ययन का कथन करनेवाले नारद की पूर्वपीठिका स्पष्ट करने के लिए लिखा गया है । वासुदेव कृष्ण नारद को 'शौच' शब्द का अर्थ पूछते हैं । नारद सीमन्धरस्वामी को पूछकर उसका अर्थ जान लेते हैं कि 'शौच 'सत्य' है ।' वासुदेव कृष्ण नारद को 'सत्य' के अर्थ पर विचारणा करने को बाध्य करते हैं । सत्य का विशेष अर्थ खोजते खोजते नारद को 'जातिस्मरण' प्राप्त होता है और वे 'प्रत्येकबुद्ध' हो जाते हैं । टीकाकार हरीभद्र के अनुसार यही 'प्रत्येकबुद्ध नारद' ऋषिभाषित के प्रथम अध्ययन का कथन करते हैं ।

विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि ऋषिभाषित के 'सोयव्व' शब्द का अर्थ हरिभद्र ने 'श्रोतव्य' न करके 'शौच' किया है । प्रत्येकबुद्धत्व की प्राप्ति के बाद उनके ही मुख से चातुर्याम धर्म का प्ररूपण करवाया है । आठवीं शती में विद्यमान हरिभद्रसूरि दीक्षापूर्वकाल में ब्राह्मण परम्परा के होने से उनके सामने मनु तथा याज्ञवल्क्य स्मृतियाँ मौजूद होंगी । मनुस्मृति में मिट्टी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और पानी से होनेवाली शुद्धता के बजाय मनःशौच तथा सत्याचरण की शुद्धता का महत्त्व बताया है ।[४५] जैन आचारशास्त्र में भावशुद्धि को अग्रिम महत्त्व दिया गया है, यह बात तो सुपरिचित ही है ।

ऋषिभाषित के 'नारद' को आदरणीय रूप से प्रस्तुत करनेवाला हरिभद्र भी नारद के बारे में दिखायी देनेवाली संभ्रमावस्था से नहीं छूटे, क्योंकि दशवैकालिकटीका में वे कहते हैं कि, 'कामकथा यथा नारदेन रुक्मिणीरूपं दृष्ट्वा वासुदेवेन कृता ।'[४६] इसी टीका में द्रौपदी के अपहरण के प्रसंग में भी नारद की भूमिका का उल्लेख है ।

यद्यपि जैन परम्परा में दोनों प्रकार के नारद चित्रित हैं तथापि ऋषिभाषित में शब्दाङ्कित नारद की पूरी कथा देकर, हरिभद्रने आदरणीय नारद के प्रति अपना झुकाव स्पष्ट किया है ।

हिन्दु पौराणिक परम्परा में भागवतपुराण[४७], वायुपुराण[४८], ब्रह्माण्डपुराण[४९] और ब्रह्मवैवर्तपुराण[५०] में नारदोत्पत्तिविषयक विविध कथाएँ दी गयी हैं । भागवतपुराण तथा ब्रह्मवैवर्तपुराण में नारद को दासीपुत्र भी कहा है । जैन साहित्य के किसी भी ग्रन्थ में नारद के दासीपुत्र होने का जिक्र कहीं भी नहीं किया है । नारद की उत्पत्तिविषयक कथा सिर्फ हरिभद्र ने ही दी है और उसको यज्ञदत्त और सोमयशा का पुत्र बताकर उनका ब्राह्मणत्व ही स्पष्ट किया है । हिन्दु पुराणों में अंकित नारद के निम्नजातीय होने की बात उत्तरवर्ती जैन ग्रन्थकारों ने क्यों नहीं उठायी होगी ? इसका समाधान यह है कि जैन शास्त्र में जन्माधार जाति को कभी भी महत्त्व नहीं दिया जाता, 'आध्यात्मिक योग्यता' ही पूज्यताका आधार मानी गयी है ।

त्रिलोकप्रज्ञप्ति में 'अतिरुद्र' नारद :

श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा में विशेष लक्षणीय पुरुषों की प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी में पुनरावृत्त होनेवाली एक परम्परा उद्धृत की गयी है। चौवन्न महापुरुष अथवा तिरसठ शलाकापुरुषों की परम्परा तो सुपरिचित है लेकिन सातवीं शताब्दी के शौरसेनी भाषारचित त्रिलोकप्रज्ञप्ति ग्रन्थ में रुद्र, नारद और कामदेवों की भी हर युग में नौ नौ संख्या बतायी हैं । त्रिलोप्रज्ञप्ति के सिवा अन्य कोई ग्रन्थ में इसका निर्देश नहीं है । त्रिलोकप्रज्ञप्ति के चतुर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाधिकार में लिखा है कि,

"भीम, महाभीम, रुद्र, महारुद्र, काल, महाकाल, दुर्मुख, नरकमुख और अधोमुख ये नौ नारद हुएं । ये सब नारद अतिरुद्र होते हुए दूसरों को रुलाया करते हैं और पाप के निधान होते हैं । सब ही नारद कलह एवं महायुद्धप्रिय होने से वासुदेवों के समान अधोगामी अर्थात् नरक को प्राप्त हुए। इन नारदों की ऊंचाई, आयु और तीर्थंकरदेवों के प्रत्यक्षभावादिक के विषय में हमारे लिए उपदेश नष्ट हो चुका है । तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, नारायण, रुद्र, नारद, कामदेव ये सब भव्य होते हुए नियम से सिद्ध होते हैं ।"[५१]

- शोधनिबन्ध में अब तक उल्लिखित ग्रन्थ में नारद के बारे में जितनी जानकारी मिलती है उससे सर्वथा अलग और चौंका देनेवाली यह जानकारी है ।
- नारद के व्यक्तिमत्त्व के सब निन्दनीय अंश इकट्ठा करके, वासुदेव आदि की तरह एक पदविशेष की निर्मिति करते हुए, वासुदेव के सम्पर्क में हमेशा रहने के कारण, उनको भी प्रथमतः नरकगामी बनाया है । नारद के नरकगामी होने का उल्लेख भी सिर्फ त्रिलोकप्रज्ञप्ति की विशेषता है ।
- कलहप्रिय एवं निन्दनीय नारद को 'काव्यगत न्याय' (Poetic Justice) के अनुसार लेखक ने नरकगामी बनाया होगा । तथापि ऋषिभाषित का आदरणीय स्थान ध्यान में रखते हुए, आगामी जन्म में नारद की सिद्धगति बताकर, लेखक ने अपनी दृष्टि से यह गुत्थी सुलझाने का प्रयास किया है।

विमलसूरिकृत पउमचरियं में नारद 'एक मिथक' :

उपलब्ध रामायण में बालकाण्ड तथा उत्तरकाण्ड में नारद की व्यक्तिरेखा अंकित की है । बीच में कहीं भी नारद का वृत्तान्त नहीं है । रामायण के चिकित्सक अभ्यासक बालकाण्ड और उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त मानते हैं । अगर विमलसूरि के सामने दोनों काण्ड होंगे तो उन्होंने अपनी प्रतिभा और सर्जनशीलता के अनुरूप नारद को रामकथा के बीच गूँथा होगा। अगर विमलसूरि के सामने (इसवी की चौथी शती) दोनों काण्ड नहीं होंगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो सम्भावना यह भी है कि इतने सारे नारदविषयक उल्लेख जैन रामायण में पाने पर वाल्मीकि-रामायण में प्रक्षेपस्वरूप नारद की व्यक्तिरेखा जोडी गयी होगी ।

विमलसूरि के सामने नारदसम्बन्धी पूर्ववर्ती जैन धारणायें जरूर रही होंगी । तथापि पारम्परिक रूप से किसी भी तरह नारद का अंतर्भाव न करके, पहली बार नारद का सम्बन्ध विमलसूरि ने रामकथा से जोडा । कृष्णकथा से जुडा हुआ राम, इतनी बार और इतने प्रसङ्गों में और इतने अलगअलग तरीके से 'पउमचरियं' में आया है कि, हम कह सकते हैं कि विमलसूरि ने हिन्दु और जैन दोनों परम्पराओं से जुडे हुए नारद की व्यक्तिरेखा का, रामकथा में एक 'मिथक' की तरह उपयोग किया है ।

नारद के मुख से यज्ञहिंसा का विरोध[५२], नारद का जटाधारी ब्राह्मण होना[५३], यज्ञविरोध के लिए दूसरे ब्राह्मण द्वारा पीटे जाना[५४], 'अज' शब्द का सही अर्थ बताना[५५], नारद का प्रसङ्गोपात्त भयभीत होना और दूसरों द्वारा पकडे जाना, भामण्डल के मन में सीता के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना[५६], रामरावण युद्ध की खबर कौशल्या को देना[५७], निर्दोष सीता के त्याग के लिए राम को दोषी मानना, सीता के दुःख से भावविभोर होना[५८], 'लव' और 'कुश' को पत्नीपर अन्याय करनेवाले राम की कथा सुनाना, दोनों को राम को पराजित कर राज्य लेने की सलाह देना[५९], लव और कुश के जन्म की खबर लक्ष्मण को देना[६०] इ. अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य विमलसूरि ने नारद के द्वारा करवाये हैं ।

रामकथा में नारद को लाने के कई कारण विमलसूरि के मन में हो सकते हैं । उन्हें वाल्मीकि-रामायण की असम्भवनीय और अतार्किक बातें सम्भावना की कोटि में लानी है । कथा के त्रुटित धागे जोड़कर कथा का धाराप्रवाह बनाये रखना है । आदर्शवत् राम ने चारित्र्यसम्पन्न सीता पर उठाये गए कलङ्क को स्पष्ट शब्दों में अंकित करने का उनका इरादा है । रामरावण युद्ध की अयोध्यावासियों को खबर न होना उन्हें ठीक नहीं लगा होगा । ये सब काम करवाने के लिए उन्हें नारद के व्यक्तित्व के अनेक चित्ताकर्षक अंश उपयुक्त लगे और उन्होंने उनका मनःपूत प्रयोग किया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन परम्परा में नारद का व्यक्तित्व प्रमुखता से कृष्णकथासम्बन्धित ही है । यद्यपि अपने महाकाव्य में विमलसूरि ने नारद का यथासम्भव उपयोजन किया तथापि एक दो अपवाद छोडकर परवर्ती जैन रामकथा में नारद की व्यक्तिरेखा का इस प्रकार प्रचलन नहीं हुआ । इस बात से भी यह सिद्ध होता है कि रामायण के प्रति विमलसूरि 'काव्यदृष्टि' से देखते थे, 'इतिहासदृष्टि' से नहीं । कथा को आगे बढ़ाने के लिए जिस प्रकार विमलसूरि ने नारद के मिथक का उपयोग कर लिया है, वह वाड्मयीन दृष्टि से काफी सराहनीय है ।

वसुदेवहिण्डी में नारद के 'विविद रूप' :

(१) देवनारद :

लगभग छठ्ठी शताब्दी के वसुदेवहिण्डी ग्रन्थ में प्रथमतः 'नारद' का उल्लेख व्यन्तरदेवों के उपप्रकार गन्धर्वदेवों में पाया जाता है । वे गायन से सम्बन्धित हैं तथा देवयोनि के अनुसार 'विकुवर्णा' भी करते हैं । इस देवस्वरूप नारद का जैनीकरण करके, उन्हें आगमानुरूप सुमधुर गीतगायन करनेवाले तथा जिनों के गुणवर्णन करनेवाले बताये हैं । ये नारद 'तुम्बरु' से सम्बन्धित है ।[६१]

(२) अहिंसावादी ब्राह्मण नारद :

वसुदेवहिण्डी में ही अहिंसावादी ब्राह्मण नारद के सम्बन्ध में कुछ वृत्तान्त कहे गये हैं । क्षीरकदम्ब गुरु का यह शिष्य नारद, गुरु की हिंसाप्रधान आज्ञा का, अहिंसक पद्धति से अन्वयार्थ देने की कोशिश करता है । ''जहाँ कोई देखें नहीं, वहाँ 'छगल' याने अज मारो'' इस वाक्य का अर्थ नारद लगाते हैं कि इस पृथ्वीतल पर एक भी जगह ऐसी नहीं है, जहाँ कोई देखता नहीं । वनस्पतियों के सचेतन होने का यहाँ विशेष विचार किया है[६२], जो जैन सिद्धान्त के अनुसार है ।

नारद–पर्वतक और वसु की कथा, जो महाभारत के शान्तिपर्व में तथा विमलसूरि के 'पउमचरियं' में उद्धृत है, वही कथा वसुदेवहिण्डी में गद्यस्वरूप में प्रस्तुत है । 'अज' शब्द के दो अर्थ है – एक छल छगल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और दूसरा अंकुरित न होनेवाले जौ । इसमें से दूसरा अर्थ यहाँ नारद को अपेक्षित है तो उन्होंने 'दयापक्ष'[६३] से लगाया है । यह नारद पशुवधरहित तथा सम्पूर्ण अहिंसावादी यज्ञ का पुरस्कर्ता है । वितथवादी पर्वतक जब स्वयं के जिह्वाछेद पर उतर आता है, तब नारद इस प्रकार की हिंसा का निषेध करता है । सगर की कथा सुनकर अन्तिमतः यह नारद प्रव्रजित होता है ।[६४] अहिंसावादी, पशुयज्ञविरोधी नारद की 'प्रव्रज्या' याने 'दीक्षा' का यह उल्लेख वसुदेवहिण्डी की अपनी विशेषता है ।

(३) नेमिनारद :

वसुदेवहिण्डी में ही 'नेमिनारद' नाम के व्यक्तिसम्बन्धित कुछ वृत्तान्त हैं । यह नारद, नेमि याने अरिष्टनेमि के तीर्थ में हुआ है । यह नारद कृष्ण, रुक्मिणी, सत्यभामा तथा प्रद्युम्न से जुडा हुआ है । कृष्ण-रुक्मिणी के विवाह में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है । नारद के द्वारा सत्यभामा तथा रुक्मिणी के बीच यह नारद 'कलह' नहीं खडा करता । इस नारद की अवज्ञा तथा अनादर किसी भी स्त्री के द्वारा नहीं होता । प्रद्युम्न के अपहरण के प्रसङ्ग में यह रुक्मिणी की मदद करता है । यह सर्वसंचारी है तथा उत्पतनी-विद्या का धारक है । वासुदेव इसके बारे में कहते हैं, ''सो एस --अम्हाणं कुलस्स अलंकारभूओ जह रिसीणं णारदो ।''[६५]

(४) कच्छुल्लनारद :

वसुदेवहिण्डी में कच्छल्लनारद के सम्बन्ध में एक-दो संक्षिप्त वृत्तान्त आये हैं । 'कच्छुल्लनारद' शब्दप्रयोग से लगता है कि लेखक को ज्ञाताधर्मकथा का नारद अपेक्षित है । ज्ञाताधर्म में जो असंयत, कलहप्रिय तथा भ्रमणशील नारद अंकित किया है उसकी थोडीसी झलक यहाँ दिखायी देती है । 'कच्छुल्लनारद' विशेषण को लेखक टाल नहीं सका लेकिन द्रौपदी का अपहरण, द्रौपदीद्वारा अनादर आदि सन्दर्भ उन्हें मंजूर नहीं है । एक अन्य जगह स्त्रियों द्वारा अनादर दिखाया तो है लेकिन एक नाट्यप्रयोग में बर्बरी, किराती आदि स्त्रियों के द्वारा दिखाया है । महत्त्वपूर्ण बात यह है कि कच्छुल्लनारद के सन्दर्भ में लेखक कहते हैं कि, ''**कच्छुल्लनारयस्स य विज्जाऽऽगमसीलरूवअणुसरिसा सव्वेसु खेत्तेसु सव्वकालं नारदा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवंति।''[६६] अर्थात् यह स्पष्ट होता है कि युगयुग में होनेवाले कच्छुल्लनारद की परिकल्पना त्रिलोकप्रज्ञप्ति के अनुसार इन्हें भी मंजूर है।

वसुदेवहिण्डी में उद्धृत सभी नारदविषयक सन्दर्भों की छानबीन करने के बाद यह लगता है कि इनके सामने, इनके पूर्व जो-जो भी नारद प्रस्तुत किये गये हैं उन सभी का समावेश यहाँ कहीं ना कहीं किया है। लेकिन पउमचरियं से 'अज-वसु' वृत्तान्त स्वीकार करके भी इन्होंने नारद को रामचरित से कहीं भी जोडा नहीं है। इससे यह स्पष्ट होता है कि ''नारद एक है, दो हैं, तीन हैं या युगयुग में होनेवाले अनेक हैं'' इसके बारे में वसुदेवहिण्डी के लेखक कुछ संभ्रमित अवस्था में ही है। लेकिन उनके प्रस्तुतीकरण की शैली से यह विदित होता है कि उनका झुकाव आदरणीय नारद के प्रति जादा है।

आख्यानकमणिकोश-टीका में 'कलहप्रिय' नारद :

आख्यानमणिकोश-टीका में (बारहवीं सदी) नारदसम्बन्धी वृत्तांत चार अलगअलग कथाओं में आये हैं। **जैन तथा हिन्दु परम्परा में बिखरे हुए अनेक वृत्तान्तों से लेखक ने चार वृत्तान्त इस प्रकार चुने हैं जिसमें नारद की कलहप्रियता एवं युद्धप्रियता स्पष्टतः दिखायी देती है। कालविपर्यय तथा एकांगी चित्रण आख्यानकमणिकोश के नारद की विशेषता है। नायाधम्मकथा का कच्छुल्लनारद ही इसका प्रेरणास्थान है।** एक जगह नारद का उल्लेख 'ऋषिनारद' के तौर पर किया है लेकिन ऋषिभाषित का यहाँ कोई भी जिक्र नहीं किया है।

ऋषभदेव के युद्धपर उतरे हुए पुत्रों की खबर नारद, विद्याधर प्रल्हाद राजा को देता है। राम और रावण के बीच संघर्ष के बीज भी नारद द्वारा ही बोये गये हैं। द्रौपदीद्वारा अपमानित होकर, उसके अपहरण के लिए पद्मनाभ राजा को यही नारद उकसाता है। सत्यभामा से अपमानित होने के कारण यह कृष्ण और रुक्मिणी का विवाह करवाता है।[६७] इनका 'ब्राह्मणत्व' तो लेखक ने स्पष्ट किया है लेकिन इनका प्रत्येकबुद्धत्व या प्रव्रज्या आदि के कोई संकेत नहीं दिये हैं। कालविपर्यासात्मक संभ्रमावस्था तो इनमें है लेकिन नारद की कलहप्रियता के बारे में उनकी द्विधावस्था नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शीलोपदेशमाला में 'जनमारक' नारद :

बारहवी सदी में जयसिंहगणि ने जैन महाराष्ट्री भाषा में रचे हुए शीलोपदेशमाला ग्रन्थ में 'नारद' के सन्दर्भ में प्रयुक्त एकमेव श्लोक नारदसम्बन्धी सम्भ्रमावस्था का अत्युच्च शिखर माना जा सकता है । वे कहते हैं –

कलिकारओ वि जनमारओ वि सावज्ज-जोगनिरओ वि ।
जं नारओ वि सिज्झइ तं खलु सीलस्स माहप्पं ।। गाथा क्र० १२

जिस शील के माहात्म्य का यहाँ जिक्र किया है उस शीलपालन की तार्किक असंभाव्यता इस गाथा में निहित है । कलिकारक, जनमारक तथा सावद्ययोगनिरत नारद इस जन्म में 'शीलपालन करनेवाला होना' कतई सम्भव नहीं है । जैन परम्परा के अनुसार बीच के जन्म में अगर उसने नरक अथवा देवगति प्राप्त की है तो इन दोनों गतियों में व्रतधारण शीलपालन आदिरूप पुरुषार्थ की भी गुंजाईश नहीं है । इसलिए गाथा की द्वितीय पंक्ति में नारद के सिद्धगति प्राप्त करने का उल्लेख हम संभ्रमावस्था का द्योतक मान सकते हैं ।

इस ग्रन्थ की बालावबोध-टीका में मेरुसुन्दरगणि ने पर्वतक-नारद वृत्तान्त, रुक्मिणी-सत्यभामा वृत्तान्त तथा नारद की उपाध्याय द्वारा परीक्षा आदि कथाएँ संक्षेप में उद्धृत की हैं । लेकिन नारद के 'जनमारक' होने का उदाहरण टीका में प्रस्तुत नहीं किया है । टीकाकार की दृष्टि नारद के प्रति मूल लेखक से अधिक आदरणीयता की दिखायी देती है ।[६८]

भागवतपुराण में नारदविषयक 'परस्परविरोधी अंश' :

भागवतपुराण के प्रायः सभी स्कन्धों में नारदविषयक उल्लेख भरे पडे हुए हैं । वे सब अंश अगर एकत्रित किये जाए तो उनमें परस्परविरोधिता स्पष्टतः नजर आती है । जैसे कि– व्यासद्वारा देवर्षि नारद की विधिपूर्वक पूजा[६९], ब्रह्मा के इन्द्रियों से नारद का प्रगट होना[७०], भगवान् की कृपा से त्रैलोक्यसंचारी होना[७१], विष्णु के चौबीस अवतारों में से तिसरा अवतार होना[७२], दक्षपुत्रों को नारद द्वारा गृहस्थाश्रमी न बनकर विरक्त होने का उपदेश[७३], दक्ष के शाप से प्रभावित होकर ब्रह्मचारी बनना तथा कलह मचाते हुए भ्रमण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करना[७४], कंस को देवकी के सब पुत्र मारने की सलाह देना[७५], सावर्णि मनु-प्राचीनबर्ही-प्रचेता तथा धर्मराज आदि को ज्ञानोपदेश देना[७६] आदि ।

श्रामणिक परम्परा का और विशेषतः उत्तराध्ययन में निहित यज्ञविषयक विचार[७७] की याद दिलानेवाला एक विशेष उल्लेख भागवतपुराण में पाया जाता है । गृहस्थों के लिए मोक्षधर्म का वर्णन करते हुए नारद कहता है कि, "किसी भी प्राणी को मन, वाणी और शरीर से किसी प्रकार का कष्ट न दिया जाय। इसीसे कोई कोई यज्ञ तत्त्व को जानेवाले ज्ञानी, ज्ञान के द्वारा प्रज्वलित आत्मसंयमरूप अग्नि में इन कर्ममय यज्ञों का हवन कर देते हैं और बाह्य कर्मकलापों से उपरत हो जाते हैं ।" उत्तराध्ययन के यज्ञविषयक विचारों का भागवतपुराण के साथ शब्दसाम्य होना बहुत ही लक्षणीय बात है । ऋग्वेद[७८], अथर्ववेद[७९] ऐतरेय ब्राह्मण[८०] तथा महाभारत[८१] में नारद का अहिंसक यज्ञ के प्रति जो झुकाव स्पष्टतः दिखायी देता है वही प्रवृत्ति भागवतपुराण के उपर्युक्त उल्लेख में निहित है । लेकिन ऋग्वेद से लेकर महाभारत तक नारद का जो सुसंगत, हिंसकयज्ञविरोधी तथा आदरणीय चित्रण दिखायी देता है वह भागवतपुराण में कलहप्रियता, स्त्रियों के सम्पर्क में रहना आदि निन्दनीय अंशों से युक्त होकर संभ्रमावस्था में दिखायी देता है । किन्तु नारद के प्रति आदरणीयता भी बारबार दिखायी गयी है ।

अर्धमागधी आगमग्रन्थ ऋषिभाषित में नारद का जो आदरणीय स्थान है उसकी पुष्टि हम महाभारत तक के ग्रन्थों में निहित नारदविषयक आदरणीयता से कर सकते हैं । अर्धमागधी आगमग्रन्थ ईसवी की पाँचवी शताब्दी में लिखित स्वरूप में आए । नन्दी[८२] और अनुयोगद्वारसूत्र[८३] इन ग्रन्थों में 'महाभारत' का उल्लेख 'भारत' (भारह) शब्द से किया है मतलब महावीर के काल में महाभारत के द्वितीय संस्करण की प्रक्रिया जारी रही होंगी । अगर ऋषिभाषित को महावीरवाणी मानी जाय तो समकालीन समाज में प्रचलित नारदविषयक आदरणीय अवधारणा ही उसमें प्रतिबिम्बित दिखायी देती है।

यद्यपि नायाधम्मकहा ग्रन्थ अर्धमागधी अङ्गआगमग्रन्थों में गिनाया जाता है तथापि प्राकृत के अभ्यासकों ने भाषा और विषय की दृष्टि से उसे पाँचवी-छठी शताब्दी के बाद का ही ग्रन्थ माना है । प्रायः चौथी-पाँचवी शती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के प्राकृत कथात्मक जैन ग्रन्थोंपर भागवतपुराण, विष्णुपुराण आदि में निहित अंशों का समान्तर रूप से प्रभावित होता जा रहा है, यह बात दिखायी देती है। इसी वजह से नायाधम्म तथा उत्तरवर्ती अनेक कथाग्रन्थों में नारद का अनादरणीय रूप ही दृग्गोचर होता है।

उपसंहार :

- जैन परम्परा ने नारद को 'ऋषि', 'देवनारद' तथा 'अनगार' इन शब्दों से व्याहृत किया है। उसे कहीं भी 'महर्षि' तथा 'देवर्षि' सम्बोधित नहीं किया है।
- दोनों परम्पराओं ने नारद का 'ब्राह्मणत्व' तथा 'ब्रह्मचर्यत्व' स्पष्टता से कहा है। नारद का जटासहित होना, पादुका तथा कमण्डलु धारण करना, वीणावादन आदि शारीरिक विशेषताएँ भी जैन परम्परा ने प्रायः बरकरार रखी हैं।
- ऋग्वेद से ही सूचित होनेवाला तथा महाभारत में भी प्रतिबिम्बित 'यज्ञीय हिंसा' का विरोध, तीव्र ज्ञानलालसा तथा उसका सर्वसंचारित्व ये गुण जैन परम्परा को अपनी मान्यताओं के अनुकूल लगे होंगे। इसी वजह से जैन साहित्य ने 'नारद' की व्यक्तिरेखा कई सदियों तक जारी रखी।
- दोनों परम्पराओं ने नारद 'एक है, दो हैं, अनेक है या युगयुग में होनेवाले हैं' इसके बारे में स्पष्ट निर्देश नहीं दिये हैं। जिस लेखक ने नारद की ओर जिस दृष्टि से देखा उसी तरह से उसे प्रस्तुत किया है। इसलिए नारद कहीं 'देवनारद' है, कहीं 'नारदपुत्त' है तो कहीं नारदीय 'परिव्राजक' है। कालविपर्यास भी दोनों परम्पराओं में समानता से दिखायी देता है। इसके फलस्वरूप हम कह सकते हैं कि जैन सिद्धान्तों से कुछ अंशों से मिलनेवाली एक विचारधारा वैदिक तथा वेदोत्तरकाल में भी जारी थी जिसका विचार महावीर के काल से पन्द्रहवी सती तक के जैन साहित्य में अनुस्यूत होता रहा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

- ऋग्वेद, अथर्ववेद तथा महाभारत में नारद पशुहिंसासमर्थक याज्ञिकों से संवाद-चर्चा तथा वादविवाद करते हुए दिखायी देता है । उत्तरकालीन पौराणिक परम्परा ने यह अंश 'कलहप्रियता' में रूपांतरित किया । फिर भी 'नारद का कलह अन्तिमतः कल्याणकर होता है' इस प्रकार नारद की कलहप्रियता का समर्थन भी किया । पाँचवी-छठी शताब्दी के अनंतर के जैन ग्रन्थों में कलहप्रियता का यह अंश ज्यादा ही आगे बढाकर उसे अपहरण, युद्ध आदि से जोड दिया।
- दोनो परम्पराओं ने नारद, स्त्रियों के सम्पर्क में रहने की बात तो अधोरेखित की है लेकिन जैन साहित्य में स्त्रियों के कलहप्रिय स्वभाव को अग्रस्थान में रखकर कलह-अपहरण आदि प्रसङ्ग के लिए नारद को जिम्मेदार ठहराया है ।
- वैदिक परम्परा ने नारद को 'देवर्षि' ही माना । जैनियों ने यद्यपि उनके दैवतशास्त्र में यथानुकूल स्थान दिया तथापि 'निम्नजातीय वानव्यन्तरों' में भी उन्हें रखा तथा पाँचवे ब्रह्मलोक नामक स्वर्ग में भी 'नारद' नाम का स्पष्ट निर्देश न करके देवर्षियों को रखा ।
- भागवतपुराण आदि ग्रन्थों में नारद का भगवद्भक्त होना, कृष्ण के गुणों का नामसंकीर्तन करना आदि के रूप में नारद का नाम भक्तिसम्प्रदाय का द्योतक होने लगा । जैन ग्रन्थों में यद्यपि नारद का सम्बन्ध गन्धर्वविद्या से जोडा है तथापि यह अंश भक्तिसम्प्रदाय में परिणत नहीं हो सका । क्योंकि जैन मान्यतानुसार 'कृष्ण' एक वासुदेव है जो उच्च आध्यात्मिक आदर्श के रूप में मान्यताप्राप्त नहीं है ।
- वेदोत्तरकालीन परम्परा में नारद के नाम पर नारदी शिक्षा, नारदोपनिषद्, नारदस्मृति तथा नारदपुराण आदि ग्रन्थ निर्माण हुए । उस परम्परा में नारद का महत्त्व इस प्रकार अधोरेखित होता है । जैन परम्परा ने नारदीय विचारधारा का समादर तो किया है लेकिन उत्तरवर्ती ग्रन्थों में केवल 'एक मिथक' के रूप में ही उसकी प्रवृत्तियाँ दिखायी देती है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्कर्ष :

नारदविषयक जैन उल्लेखों में सबसे प्राचीन उल्लेख अर्धमागधी ग्रन्थ ऋषिभाषित में पाया जाता है । वहाँ नारद को अर्हत्, ऋषि तथा देव शब्द से सम्बोधित किया है । नारद को सिद्ध, बुद्ध और मुक्त भी कहा है । प्राचीन जैन दार्शनिकों के उदारमतवादी दृष्टिकोण का यह अत्युच्च शिखर है ।

धीरे धीरे हिन्दु पौराणिक मान्यताओं के अनुसार नारद के व्यक्तिमत्व में नये नये अंश जुडते गये, पुराने अंश ओझल होने लगे । नारद को सर्वादरणीय स्थान देने में जैन आचार्य भी झिझकने लगे । सामाजिक मान्यताओं के साथ साथ अन्तर्गत साम्प्रदायिक अभिनिवेश भी बढने लगा । परिणामवश नारद के व्यक्तित्व के बारे में संभ्रमावस्था पैदा हुई । पूरी आदरणीयता और पूरी अनादरणीयता के बीच नारद के बारे में वैचारिक आन्दोलन चलते रहे ।

इस संभ्रमावस्था का हल वैयक्तिक स्तर पर निकालने के प्रयास हुए। इसी वजह स्थानाङ्ग में उसे देव कहा है । समवायाङ्ग में भावी तीर्थङ्कर कहा है । भगवतीसूत्र में सिर्फ उसकी जिज्ञासा पर प्रकाश डाला है । तत्त्वार्थसूत्रकार ने दैवतशास्त्र में दो विभिन्न स्थान तय किये हैं । ज्ञाताधर्म में वह सिर्फ कच्छुल्लनारद है । औपपातिक में नारदीय परिव्राजकों की परम्परा है । आवश्यकनिर्युक्ति तथा टीका में नारदोत्पत्ति की अभिनव कथा है । त्रिलोकप्रज्ञप्ति के नारद अतिरुद्र है । शीलोपदेशमाला में उसे जनमारक कहा है । वसुदेवहिण्डी में तो नारद के विविध रूप रेखांकित किये हैं । आख्यानमणिकोशकार का नारद कलहप्रिय है । और विमलसूरि ने नारद को एक मिथक के रूप में मनःपूत उपयोजित किया है । विशेष बात यह है कि जैन नारद में दिखायी देनेवाले ये सब परिवर्तन लेखक की वैयक्तिक दृष्टिकोण से जुडे हुए हैं, कालानुसारी नहीं है । भक्ति तथा कीर्तन-संकीर्तन से सम्बन्ध जुडने के बाद तो नारद जैन साहित्य से ओझल ही हो गया ।*

C/o. सन्मति ज्ञानपीठ
पुणे

टि. * इस लेख पर टिपण्णी अगले अंकमें दी जायेली । -सं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ

१. ऋषिभाषित १.२, ११
२. ऋग्वेद ८.१३.३१
३. वाल्मीकि-रामायण बालकाण्ड
४. आवश्यकटीका पृ. ७०६-अ-पंक्ति ७
५. ऋषिभाषित १.२
६. स्थानांग ४.१२४
७. स्थानांग ७.४३;८.११६; ७.११३-१२२
८. भागवतपुराण दशम स्कन्ध ; अद्भुत रामायण ७
९. देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ।
मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमांश्चराम्यहम् ॥ भागवतपुराण प्रथम स्कन्ध ; हरिवंश १.४८.३५
१०. समवायांग प्रकीर्णक सूत्र २५१-२५२
११. भागवतपुराण १.३.८
१२. उत्तरपुराण ७६.४७१-४७५
१३. प्रवचनसारोद्धार गाथा क्र. ४६८
१४. भगवतीसूत्र शतक ५ उद्देशक ८
१५. छांदोग्य उपनिषद ७.१.१
१६. महाभारत, शांतिपर्व ३४६.१०-११; ३४८.६-८, नारायणीय उपाख्यान
१७. भागवतपुराण दूसरा स्कन्ध
१८. तत्त्वार्थसूत्र ४.१२ और उसकी टीका पृ. १०१
१९. पन्नवणा प्रथम पद सूत्र १३२; प्रज्ञापनाटीका (मलयगिरी) पृ. ७०
२०. तत्त्वार्थसूत्र १.२१, २२
२१. रामायण बालकाण्ड
२२. भागवत पुराण १.५
२३. ब्रह्मलोकालया लोकान्तिकाः । तत्त्वार्थसूत्र ४.२५, २६ और उसकी टीका
२५. भागवतपुराण १.५
२६. औपपातिक सूत्र ९६
२७. ज्ञाताधर्मकथा १.१६.१८५, १८६-१९०, १९६-२०१, २२६, २२७-२३२
२८. ज्ञाताधर्मकथा १.१६.१८५
२९. दशवैकालिकटीका ३.१८८, १९२
३०. कल्पसूत्रटीका पृ. २८-३१
३१. आख्यानमणिकोश, सुपात्रदानवर्णनाधिकार पृ. ४६
३२. प्रवचनसारोद्धार
३३. शीलोपदेशमाला - बालावबोध पृ. ११-१३
३४. उपदेशपदटीका गाथा ६४५-६४८
३५. ऐतरेय ब्राह्मण पञ्चिका ७
३६. वाल्मीकि-रामायण उत्तरकाण्ड सर्ग-२०
३७. विष्णुपुराण ५.३०
३८. मार्कण्डेयपुराण १.३०-४७
३९. महाभारत, अनुशासन पर्व ७३
४०. औपपातिक सूत्र ९६
४१. औपपातिकटीका (घासीलालजी महाराज) पृ. ५३९-५५८
४२. आवश्यकनिर्युक्ति गाथा १२९५-१२९६
४३. आवश्यकटीका पृ. ७०५-७०६
४४. महाभारत आश्वमेधिक पर्व १३.२,५, ९; सभापर्व २.२२५.७
४५. मनुस्मृति ५.१०६, १०९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. दशवैकालिकनिर्युक्ति गाथा १९२ की टीका
४७. भागवतपुराण १.५
४८. वायुपुराण २.४.१३५-१५०
४९. ब्रह्मांडपुराण ३.२.१८
५०. ब्रह्मवैवर्तपुराण १.१३
५१. त्रिलोकप्रज्ञप्ति ४.१४६९-१४७३
५२. पउमचरीयं ११.२५, ११.७५-८१
५३. 'दीहजडामउडभासुरं' पउमचरियं २८.३
५४. पउमचरियं ११.८२-८४
५५. पउमचरियं ११.२५
५६. पउमचरियं २८.७-१९
५७. पउमचरियं ७८.८-२२
५८. पउमचरियं ९८.४८, ४९
५९. पउमचरियं ९९.४-९
६०. पउमचरियं १००.२८
६१. ''पगीया तुंबरु-णारद-हाहा-हूहू-विस्सावसू य सुतिमहुरं सवणासण्णं थुणमाणा 'उवसम भयवं !' ति जिणणामाणि खमागुणे य वण्णेंता ।''
वसुदेवहिण्डी गन्धर्वदत्ता लम्भ पृ. १२७, १३०
६२. तत्थ चिंतेइ-वणस्सइओ सचेयणाओ पस्संति । 'जत्थं न कोइ पस्सति तत्थ णं वहेयव्वो' । 'अवज्झो एसो नूणं' । वसुदेवहिण्डी सोमसिरिलंभ पृ. १८९
६३. नारएण निवारिओ - मा एवं भण, समाणो वंजणाहिलावो, अत्थो पुण धण्णेसु निपतति दयापक्खण्णुमतीए य त्ति । वसुदेवहिंडी सोमसिरिलंभ पृ. १९०
६४. वसुदेवहिण्डी सोमसिरिलंभ, पृ. १९०
६५. वसुदेवहिण्डी पृ. १०८
६६. वसुदेवहिण्डी पृ. ३२५
६७. आख्यानमणिकोश (अ) सुपात्रदानवर्णनाधिकार में नागश्रीब्राह्मणीआख्यान, पृ. ४६
(आ) शीलमाहात्म्यवर्णनाधिकार में सीताख्यान, पृ. ५९
(इ) तपोमाहात्म्यवर्णनाधिकार में रुक्मिणीमध्वाख्यान, पृ.७२-७४
(ई) भावनास्वरूपवर्णनाधिकार में भरताख्यान, पृ. ८६
(उ) नारएण नारायणस्स कहियं । पृ. ७६-७९
६८. शीलोपदेशमाला-बालावबोध, पृ. ९-१३ (शीलोपदेशमाला गाथा १२ के ऊपर टीका (बालावबोध))
६९. भागवतपुराण प्रथम स्कन्ध
७०. भागवतपुराण ३.१२.२८
७१. भागवतपुराण प्रथम स्कन्ध
७२. भागवतपुराण १.३.८
७३. भागवतपुराण ६.५.३०-३३
७४. भागवतपुराण ६.५.३७-३९
७५. भागवतपुराण १.१.६४
७६. भागवतपुराण १.३.८; ५.१९; ४.२५-३१; ७.१३-३५
७७. (अ) तसपाणे वियाणेत्ता, संगहेण य थावरे ।
जो न हिंसइ तिविहेणं, तं वयं बूम माहणं ॥ उत्तराध्ययन २५.२३
(आ) तवो जोइ जीवो जोइठाणं, जोगा सुया सरीरं कारिसंगं ।
कम्मेहा संजमजोग सन्ती, होमं हुणामि इसिणं पसत्थं ॥ उत्तराध्ययन १२.४४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७८. ऋग्वेद ८.१३.३०

७९. अथर्ववेद १२.४.४२

८०. ऐतरेय ब्राह्मण ७.१३

८१. महाभार, शान्तिपर्व, उपरिचर वसु राजा

८२. नन्दीसूत्र, सूत्र ४२

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचि

१. अथर्ववेद : भाषांतरकार – सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्रकोश मंडळ, पुणे, १९६९

२. आवश्यकसूत्र : भद्रबाहु (निर्युक्ति) आणि हरिभद्रसूरिटीकासहित, आगमोदय समिति, महेसाणा, १९१६

३. उत्तराध्ययन (उत्तरज्झयण) : सं. मुनि पुण्यविजय, महावीर जैन विद्यालय, मुंबई, १९७७

४. उपदेशपद (उवएसपय) : आ. हरिभद्र, सं. प्रतापविजयगणि, बडोदा, १९२३

५. ऋग्वेद : भाषांतरकार – सिद्धेश्वरशास्त्री चित्राव, भारतीय चरित्रकोश मंडळ, पुणे, १९६९

६. ऋषिभाषित (इसिभासिस) : सं. डॉ. वाल्थर शुब्रिंग, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामंदिर, अहमदाबाद, १९७४

७. ऐतरेय ब्राह्मण : सं. धुण्डिराज गणेश दीक्षित बापट, स्वाध्याय मन्दिर, पांचवड, सातारा, शके १८६३

८. औपपातिक (उववाई) : उवंगसुत्ताणि ४ (खण्ड २), जैन विश्वभारती, लाडनू (राजस्थान), १९८६

९. ज्ञाताधर्मकथा (नायाधम्मकहा) : अंगसुत्ताणि ३, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.स. २०३१

१०. तत्त्वार्थसूत्र : वाचक उमास्वाति,विवेचक – पं. सुखलालजी संघवी, सं. डॉ. मोहनलाल महेता, जैन पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, २००१

११. त्रिलोकप्रज्ञप्ति (तिलोय–पण्णत्ति) : आ यतिवृषभ, सं. प्रो. आदिनाथ उपाध्याय, प्रो. हीरालाल जैन, जीवराज जैन–ग्रन्थमाला १, जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर, १९४३

१२. दशवैकालिकटीका : हरिभद्रसूरि, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई, १९१८

१३. पउमचरियं : विमलसूरि, सं. डॉ. एच्. जेकोबी, प्राकृत ग्रन्थ परिषद, वाराणसी, १९६२

१४. प्रज्ञापना : उवंगसुत्ताणि ४ (खण्ड २), आ. महाप्रज्ञ, जैन विश्वभारती, लाडनूं, १९८९

१५. प्रज्ञापनाटीका : मलयगिरी, आगमोदयसमिति, महेसाणा, १९१८

१६. भगवती (भगवई) : अंगसुत्ताणि २, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१

१७. भागवतपुराण : गीता प्रेस, गोरखपुर

१८. भारतीय संस्कृतिकोश : सं.पं. महादेवशास्त्री जोशी, भारतीय संस्कृतिकोश मंडळ पुणे, १९६२

१९. मनुस्मृति (सार्थ सभाष्य) : सं. स्वामी वरदानन्द भारती, श्रीराधादामोदर प्रतिष्ठान, पुणे, १९२३

२०. महाभारत : शान्तिपर्व, सं. डॉ. पं. श्री दा.सातवलेकर, पारडी, १९८०

२१. समवायाङ्ग : अंगसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान) वि.सं. २०३१

२२. स्थानाङ्ग (ठाण) : अङ्गसुत्ताणि १, जैन विश्वभारती, लाडनूं (राजस्थान), वि.सं. २०३१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org